श्री:

आचार्यग्रन्थमाला—३

श्रीवेदान्तदेशिक

लेखक—

श्री राघवाचार्य

विजयादशमी, सं० २००६

प्रकाशकः—

प्रथम संस्करण } श्री आचार्य पीठ { मूल्य ।।)

बरेली

प्रस्तावना

बरसों से इच्छा थी कि जीवन चरित्र लिखकर श्री देशिक की अर्चना की जाय। चार बरस पूर्व पूरा चरित्र लिखा भी था। लिखकर उसे एक महानुभाव के पास छपाने के लिये भेज दिया था। इतने दिन बीत गए। चरित्र का छपना तो दूर रहा उसकी एक मात्र पाण्डुलिपि भी न मिल सकी। बारम्बार पाण्डुलिपि वापिस लौटाने को लिखा किन्तु व्यर्थ। कई मास हुए उन महानुभाव का वैकुण्ठवास होगया। अतः उस के मिलने की आशा ही नहीं रही।

इसी निराशा में चरित्र लिखने का पुनः सौभाग्य मिला। जो कुछ लिखा वह प्रकाश में है।

इस चरित्र के लिखजाने से श्री देशिक की सेवा पूरी नहीं होगई और न पढ़ लेने से सेवा पूरी हो जायगी। उनका हम पर, हमारी परम्परा पर ऐसा ऋण है जिससे हम कदापि उऋण नहीं हो सकते। मनसा वाचा कर्मणा हम उनकी सेवा करते रहें। इस पुनीत कार्य में यह चरित्रग्रन्थ हमें सहायक होगा।

श्रीवैष्णव धर्मप्राण सेठ श्री मंगनी राम जी बांगड ने 'आचार्यग्रन्थमाला' का संरक्षण कर इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में आर्थिक सहायता दी है जिसके हम सदा कृतज्ञ रहेंगे।

—लेखक

श्रीवैष्णव धर्म प्राण

सेठ श्री मंगनीराम जी बांगड

श्रीः

श्री वेदान्त देशिक

आवश्यकता

शेषावतार श्री रामानुज मुनीन्द्र ने अपने जीवन काल में ही धर्म-प्रचार एवं सत्सम्प्रदाय की शिक्षा-दीक्षा के लिये आचार्यों को नियुक्त कर दिया था। उनकी परमपद यात्रा के बाद इन आचार्यों की परम्परा लगातार तीन पीढ़ियों तक अबाध गति से अपने उत्तरदायित्व को निबाहती रही। किन्तु धीरे धीरे श्री रंगनगरी के महान केन्द्र के विकेन्द्रित होते जाने के कारण आचार्यों का संगठन शिथिल पड़ने लगा और कार्य की गति मन्द हो गई। उधर धर्मविरोधियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। एक ओर शुष्क तार्किक व्यर्थ के वादविवादों द्वारा सिद्धान्त पथ को कलंकित करने का दुस्साहस कर रहे थे और दूसरी ओर म्लेच्छ शासक तलवार के सहारे अपने मत को जनता पर लादने का अत्याचार कर रहे थे। हिमालय से कन्याकुमारी तक सारे देश में आतंक छाया हुआ था और सर्वसाधारण अपने जीवन और धर्म दोनों को बचाने का उपाय ढूँढ रहे थे। परन्तु अधिकतर विद्वानों को धुन लगी हुई थी शास्त्रार्थों में अपनी विजय घोषणा कराने की। ऐसी स्थिति में आवश्यकता थी एक ऐसे महापुरुष की जो आचार्यों में अभिनव

चेतना का सञ्चार करता, बुद्धिवादियों की शंकाओं का समाधान करता, शास्त्रवादियों को शास्त्रों का रहस्य समझाता और धार्मिक समाज को धर्म पथ से विचलित न होने देना।

अवतार-पुरुष

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। वही अवतार का भी मूल कारण बनती है। यदि आवश्यकता न हो तो खोज की ओर किसी की प्रवृत्ति ही न हो। मानव को खोज करने के लिये बाध्य कर देती है यही आवश्यकता। इसकी पूर्ति के लिये वह आगे बढ़ता है। परन्तु क्या वह अपने बल पर सफल हो पाता है? तब तक नहीं, जब तक कि उसका मन, उसकी बुद्धि, उसका शरीर तल्लीन नहीं हो जाता; और इस अवस्था में उसे मिलता है आविष्कार के रूप में दैवी प्रसाद। बस, इसी प्रकार आर्तजनों की पुकार पर भक्तों की कामना और भगवान् के सङ्कल्प का फल होता है महापुरुष का प्रादुर्भाव। नित्य मुक्त ही नहीं प्रत्युत भगवान् तक अवतरित होते हैं और लोक हित का सम्पादन एवं विश्व कल्याणकारी धर्म का संस्थापन करते हुये आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। कहना न होगा कि हमारे चरितनायक ने भी अवतार ग्रहण कर यही किया।

पृष्ठ भूमि

धर्म की संस्थापना का भारतभूमि के साथ सदा का सम्बन्ध है। इसी धर्मभूमि पर सुदूर दक्षिण में है द्राविड प्रदेश। इसी

प्रदेश में है मोक्षपुरी काञ्ची नगरी जो प्राचीन काल से अपने अठारह दिव्यदेशों के लिये प्रसिद्ध रही है। इन दिव्यदेशों में से एक है तिरुत्तण्का जहाँ श्री दीपप्रकाश भगवान् विराजमान हैं। श्री रामानुज मुनीन्द्र द्वारा आचार्य पद पर नियुक्त तूप्पुल (विश्वामित्र कुल तिलक) श्री अनन्त सोमयाजी यहीं निवास करते थे। उनके पुत्र हुये श्री पुण्डरीकाक्ष और उनके पुत्र हुये श्री अनन्तसूरि। श्री अनन्त सोमयाजी का जीवन पूर्णतया आचार्योचित था। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' अर्थात् पिता का आत्मा ही पुत्र होता है, यह सूक्ति उनके पुत्र एवं पौत्र के सम्बन्ध में चरितार्थ थी। पौत्र श्री अनन्तसूरि का विवाह श्री वादिहंसाम्बुद रामानुजाचार्य (अप्पुल्लार), की बहिन के साथ हुआ। इनका नाम था श्री तोताद्रि अम्माल्। ये ही दम्पती हमारे चरितनायक के माता-पिता थे।

चिन्तित दम्पती

माता ने बहुत दिनों तक सन्तान का मुख नहीं देखा। इसका दुःख उनको निरन्तर सताया करता था। गोद सूनी होने पर माता को सुख कहाँ? उनके पतिदेव को भी यही चिन्ता सता रही थी। भावी बलवान् होती है। अकस्मात् उनके मन में तिरुपति जाकर श्रीवेंकटेश भगवान् का दर्शन करने की इच्छा हुई। शुभ मुहूर्त में अपनी धर्मपत्नी के साथ उन्होंने तिरुपति यात्रा के लिये प्रस्थान किया।

वहाँ पहुँच कर भगवान् का दर्शन करने से आप को अपूर्व शान्ति मिली। भगवान् के दिव्य सौन्दर्य से पति-पत्नी इतने

आकृष्ट हुये कि निरन्तर उनके ध्यान में भगवान् की मूर्ति बनी रहने लगी। कुछ दिनों तक दम्पती वहीं ठहरे।

सच्चा स्वप्न

एक रात्रि की बात है। पत्नी ने एक विचित्र स्वप्न देखा। एक परम तेजोमय बालक ने आकर उनके हाथ में भगवान् का स्वर्ण घण्टा दे दिया और कहा—'यह श्रीवेंकटेश भगवान् का प्रसाद है; इसको स्वीकार करो।' इसके बाद ही उनकी आँख खुल गई। उन्होंने अपने पतिदेव को जगाया और स्वप्न का सारा वृत्तान्त सुनाया। सुन कर वह बोले 'मैं भी यही स्वप्न देख रहा था।' इसके अनन्तर किसी को नींद नहीं आई। स्वप्न पर विचार करते करते प्रातः काल हो गया। पति-पत्नी दोनों नित्य कृत्य को समाप्त कर भगवान् का दर्शन करने के लिये चले। उधर जब प्रातःकाल अर्चक ने भगवान श्रीवेंकटेश के मन्दिर के कपाट खोले तो स्वर्ण घण्टा नहीं दिखाई दिया। सारे मन्दिर को ढूँढ डाला गया। कहीं घण्टे का पता न लगा। अन्त में जब अर्चक महोदय इसकी सूचना मन्दिर के व्यवस्थापक को देने गये तो पहुँचते ही व्यवस्थापक महोदय ने उनसे कहा—'स्वर्ण घण्टा मन्दिर में न होगा। वह अब नहीं मिलेगा। रात स्वप्न में भगवान् ने बता दिया कि उन्होंने स्वयं वह घण्टा प्रसाद के रूप में आचार्य श्री अनन्तसूरि की पत्नी को दे दिया।' सुन कर अर्चक महोदय को सान्त्वना मिली। यह समाचार बिजली के समान सारे नगर में फैल गया। सभी आश्चर्य चकित थे। श्री अनन्तसूरि और

विष्णुघण्टावतार

श्री वेंकटनाथ देशिक

उनकी पत्नी को घण्टे के मन्दिर से अन्तर्धान होने की बात सुन कर स्वप्न की सत्यता में विश्वास होने लगा। एक दम उनके मन में यह विचार उठने लगा कि क्या भगवान् के स्वर्ण घण्टा की दैवीशक्ति ही उनकी सन्तान के रूप में अवतरित होगी।

अवतार

इस घटना के ४-६ दिनों के बाद श्री अनन्तसूरि अपनी धर्मपत्नी के साथ साथ काञ्ची वापिस लौटे। पत्नी श्री तोताद्रि अम्मा को गर्भवती होने का अनुभव होने लगा। धीरे धीरे गर्भ के चिन्ह प्रत्यक्ष होने लगे। किन्तु महीनों की तो बात ही क्या, एक एक करके ग्यारह वर्ष बीत गये। बारहवें वर्ष के भी ग्यारह मास बीत जाने पर वह शुभ नक्षत्र और घड़ी आई जब कि हमारे चरितनायक ने माता की कोख से जन्म ग्रहण किया। कलि संवत् था ४३६६ और विक्रम संवत् था १३२५। आश्विन के श्रवण नक्षत्र में विजयादशमी का शुभ दिन था। इस दिन श्री वेंकटेश भगवान् का जयन्ती महोत्सव मनाया जाता है। इसी दिन उसी घड़ी में हमारे चरितनायक अवतरित हुये।

वर्ष गांठ

नवजात शिशु के संस्कार होने लगे। पालन पोषण किया जाने लगा। जातकर्म हुआ। नामकरण हुआ। बालक का नाम रक्खा गया 'वेंकटनाथ'। फिर समयानुसार अन्नप्राशन

हुआ। वर्षगाँठ का दिन भी आ पहुँचा। इस दिन पिता जी बालक को भगवान के मन्दिर में ले गये। वहाँ एक विचित्र बात हुई। तीर्थ प्रसाद के वितरण के बाद अर्चक महोदय पर आवेश हो गया और उनके मुख से यह भविष्यवाणी निकली कि बालक किसी दिन धार्मिक जगत का नेतृत्व करेगा।

आशीर्वाद

श्री वेंकटनाथ के दैवी गुण किसी से छिपे नहीं रह सके। जैसे जैसे आप वह बढ़ते जाते थे आप का तेज भी बढ़ता जाता था। समय से चूडाकर्म हुआ। फिर अक्षरारम्भ कराया गया। बाल्यकाल में ही आप अलौकिक बुद्धि के चमत्कार से विद्वानों को चकित कर देते थे। आप सभी को प्रिय लगते। आप के रूप में आप के मधुर वचनों में ऐसा आकर्षण था कि जो एक बार भी आप के सम्पर्क में आ जाता उसका मन आप को छोड़ना न चाहता। माता-पिता के आप प्राण थे। मामा श्री वादिहंसाम्बुद गुरु का आप पर अपार स्नेह था। वह समय पर आप को देखने के लिये आते। एक दिन की बात है, मामा जी को श्री अम्माल् वरदाचार्य जी का कालक्षेप श्रवण करने जाना था। उन्होंने सोचा कि श्री वेंकटनाथ को देखते हुये उधर चले जावेंगे। वह आप के घर आये। थोड़ी देर बाद जब वह जाने लगे तो श्री वेंकटनाथ भी साथ जाने के लिये मचल गये। बाल हठ। मामा जी भानजे के हट को अस्वीकृत नहीं कर सके। अतः

श्री वेंकटनाथ के साथ ही आप कालक्षेप गोष्ठी में पहुँचे। इसमें मामा जी को काफी देर लग गई। वहाँ प्रवचन आरम्भ हो चुका था। मामा जी और उनके भानजे ने पहुँच कर श्री अम्माल् को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। कुशल प्रश्न के बाद मामा जी ने गुरुवर्य से बालक का भी परिचय करा दिया। इसके अनन्तर दोनों उचित स्थान पर बैठ गये। बालक वेंकटनाथ के तेज ने गोष्ठी में सभी लोगों को आकृष्ट कर लिया था। यहाँ तक कि श्रोता लोग यह भी भूल गये थे कि पाठ कहाँ तक हो चुका है। सभी सकपकाकर एक दूसरे का मुख देखने लगे। इतने में बालक ने वह पंक्ति बोल दी जिसकी श्री अम्माल् व्याख्या कर रहे थे। बालक के मुख से पंक्ति के विशुद्ध और मधुर उच्चारण को सुन कर सभी चकित रह गये। सभी को वेंकटनाथ की अलौकिकता पर विश्वास होने लगा। प्रवचन समाप्त होने पर आचार्य श्री अम्माल् ने बालक को अपने पास बुला कर यूँ आशीर्वाद दिया :—

प्रतिष्ठापितवेदान्तः प्रतिक्षिप्तबहिर्मतः ।
भूयास्त्रैविद्यमान्यस्त्वं भूरिकल्याणभाजनम् ॥

अर्थात् 'वेदान्त की प्रतिष्ठा और अवैदिक मत-मतान्तरों का निराकरण कर तुम वैदिक समाज के मान्य और कल्याण के पात्र बनोगे।'

अध्ययन

आचार्य श्री अम्माल् ने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से हमारे चरित-नायक को देखा था। वह समझ गये थे कि किसी दिन आप श्री

वैष्णव जगत के निर्वाहक आचार्य होंगे। अतः उन्होंने आप के मामा श्री अप्पुल्लार को एकान्त में बुला कर समझाया कि 'श्री वेंकटनाथ के अध्ययन का सारा उत्तरदायित्व तुम पर है। अतः अभी से अध्ययन को चलाने की ठीक ठीक व्यवस्था करो।' गुरु-देव के आदेश का यथावत् पालन हुआ। श्री अप्पुल्लार इस ओर पूरा पूरा ध्यान देने लगे। आठवें ही वर्ष श्री वेंकटनाथ का यज्ञोपवीत संस्कार होगया। पाञ्चरात्र आगम में बताये गये पांच संस्कार भी होगये। मामा जी स्वयं ही श्री वेंकटनाथ को शिक्षा देने लगे। वेद और शास्त्रों का अध्ययन भली भांति हुआ। सांगो-पाङ्ग वेद और पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों की शिक्षा ठीक ठीक हुई। विद्यार्थी वेंकटनाथ में दैवी प्रतिभा थी। इसलिए अध्ययन में अधिक दिन नहीं लगे। २० वर्ष की आयु तक पहुँचते पहुँचते आपने साहित्य और कला का अध्ययन समाप्त कर लिया।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश

श्री वेंकटनाथ देशिक को अब कुछ भी अध्ययन करना शेष नहीं रह गया था। अतएव आपने विद्यार्थी जीवन से विश्राम ले लिया। माता पिता पुत्र को महाविद्वान देखकर प्रसन्नता से फूले न समाते थे। उन्होंने पुत्र को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा दी। अध्ययन काल में ही आपका लक्ष्य आचार्योचित जीवन व्यतीत करने की ओर था। वंश परम्परानुसार आपका कर्तव्य यही था। आश्रम व्यवस्था को उसी का अंग समझकर श्री देशिक ने माता-पिता के आदेश का पालन किया।

थी। अतः पारिवारिक जीवन में आप के सामने कोई बाधा नहीं आ सकी। इस लिये शान्तिपूर्वक आपने आचार्य के उत्तरदायित्व को निर्वाह करने का विचार किया। इसके लिये अध्ययन के बल का सम्पादन आप कर ही चुके थे। किन्तु केवल विद्याबल ही पर्याप्त न था। इष्ट के बिना विद्वान का महत्व नहीं होता। विद्याबल के साथ साथ दैवीबल की आवश्यकता थी। आप जन्मना दिव्य विभूति थे। परन्तु दैवीबल के साथ सम्बन्ध हुये बिना दिव्य प्रतिभा का प्रकाश नहीं होता। इसके लिये भगवत्प्रेरणा हुई। एक शुभ दिन आया। इस दिन आपके आचार्य श्री अप्पुल्लार ने आप को भगवान के मन्दिर में ले जाकर गरुड मन्त्र का उपदेश दे दिया कुछ समय के पश्चात् आपके माता पिता परमपद सिधार गये। आपके मामा जी ने भी आपको अन्तिम उपदेश देकर वैकुण्ठ की राह ली।

दैवी शक्ति की प्राप्ति

इस प्रकार वंशपरम्परागत और आचार्यपरम्परागत आचार्यत्व का सारा भार श्री देशिक पर आ चुका था। धार्मिक जगत टकटकी लगाये आपकी ओर देख रहा था। श्री वैष्णव समाज अम्माल के आशीर्वाद को भूला न था। आप भी अपने कर्तव्यानुष्ठान के लिये सन्नद्ध थे ही। श्री अहीन्द्रपुर जाकर औषधाद्रि पर आपने गरुड की आराधना आरम्भ की। गरुड प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रकट होकर आपको विद्यामूर्ति ज्ञान के

प्रतीक श्री हयग्रीव भगवान के मन्त्र का उपदेश दिया और साथ ही उनकी एक अर्चामूर्ति भी आपको दी। अब आपने श्री हयग्रीव भगवान् की उपासना आरम्भ की। इस कार्य में भी आप शीघ्र ही सफल हुए। प्रसन्न होकर श्री हयग्रीव भगवान् ने आपको दर्शन दिये। उनकी कृपा से आपको समस्त विद्याओं का तत्त्व ज्ञान तथा पूर्ण दैवीबल प्राप्त होगया।

कार्यारम्भ

अब श्री देशिक आचार्य की हैसियत से कार्यक्षेत्र में आये। आचार्य में जो जो गुण होने चाहिये वे सब आप में थे। साथ ही स्वाचार्य के, अपनी आचार्य-परम्परा के तथा भगवान् के आप परिपूर्ण कृपापात्र थे। किस स्थान से प्रचार कार्य आरम्भ किया जाय? इस प्रश्न पर विचार करने के पश्चात् आपने यह निश्चय किया कि अपनी जन्म-स्थली से इसका मंगलाचरण किया जाय। इसी विचार से आप काञ्ची आये। परन्तु अहीन्द्रपुराधीश श्री देवनायक भगवान् ने स्वप्न में दर्शन देकर आप से कहा—'वेंकटनाथ! तुमने हमें बिल्कुल ही भुला दिया, क्या हमारे दिव्य क्षेत्र से ही अपने कार्यक्रम का आरम्भ नहीं कर सकते?' भगवान् की इस आज्ञा से प्रेरित होकर आपने निश्चय को बदल दिया।

तिरुअहीन्द्रपुर में

काञ्ची से श्री देशिक तिरुअहीन्द्रपुर आये। यहाँ आप के उपदेश होने लगे। आप की प्रतिभा से सर्व साधारण से लेकर

विद्वान तक सभी आकृष्ट और प्रभावित होने लगे। योग्य शिक्षार्थियों को पाकर आपने वेदान्त ग्रन्थों का प्रवचन भी आरम्भ कर दिया। श्री देवनायक भगवान् की प्रेरणा ही आप को इस दिव्य क्षेत्र तक लाई थी। अतः आपने अपना पहिला ग्रन्थ उनकी स्तुति में ही लिखा। यह ग्रन्थ 'श्री देवनायक पञ्चाशत्' कहलाया। इस स्तुति की रचना में आप का अनुभव आल्वार सन्तों तक पहुँच गया। अपनी अनुरागमयी मनोभावना को भक्तिनी नायिका की स्थिति में पहुँचा कर आपने श्री देवनायक भगवान् को नायक के रूप में वरण किया और इसी दशा में आपने द्राविड पद्यों में कई प्रबन्ध लिखे। इसी दिव्य देश में विराजमान श्री गोपालकृष्ण और जगन्माता श्री हेमाब्ज नायिका लक्ष्मी स्तुति की भी आपने रचना की। आप का प्रवचन-कार्य प्रति दिन चलता रहता था तथा ग्रन्थ रचना भी चलती रहती थी।

एक दिन मन्दिर में भगवान् का उत्सव होरहा था। उत्सव में आल्वार सन्त श्री परकाल की लीला हो रही थी। भगवान् के दिव्य मंगल विग्रह से श्री परकाल वस्त्र उतार रहे थे। श्री देशिक आनन्द मग्न होकर उत्सव में भाग ले रहे थे। इसी अवसर पर कुछ श्रीवैष्णव विद्वानों ने आप से इस लीला के औचित्य पर प्रश्न किया। उत्तर में आपने विस्तार पूर्वक इस लीला की उपयोगिता समझाई। आपके उत्तर से उन विद्वानों के सारे संदेह दूर होगये। इसी विषय को आपने 'स्तेयाविरोध' नामक ग्रन्थ लिखकर लिपिबद्ध कर दिया।

तिरुक्कोवलूर में

श्रीदेशिक ने कई वार काञ्ची जाने की इच्छा की। किन्तु स्थानीय जनता के आग्रह तथा शिष्यों की प्रार्थना के कारण आप तिरुअहीन्द्रपुर छोड़ न सके। लगभग ३५ वर्ष की अवस्था तक आपने वहीं निवास किया। काञ्ची देखने की कामना बलवती होती जा रही थी अतः आपने इसके लिये श्री देवनायक भगवान् की प्रार्थना की। भगवान् ने आज्ञा देदी। बड़े सम्मान के साथ आप वहां से विदा हुए। मार्ग में आपने तिरुक्कोवलूर की यात्रा की। यह वह स्थान है जहां पर प्रथम तीन आल्वार सन्तों ने भगवान् का साक्षात्कार किया था। यहाँ पर भगवान् का दर्शन कर आपने स्तुति की। कई शंकावादियों ने आकर आप से शंखचक्रांकन तथा ऊर्ध्वपुण्ड्रधारण पर शंकाएँ कीं। आपने उन सभी शंकाओं का विस्तार पूर्वक समाधान किया। और इस सारे समाधान को 'सच्चरित्र रक्षा' नामक ग्रन्थ लिख कर लिपिबद्ध किया।

काञ्ची में

तिरुक्कोवलूर से श्री देशिक काञ्ची आए। नगर वासियों में आप के आगमन से प्रसन्नता छा गई। उनके अनुरोध को स्वीकार कर आप ने कुछ दिन यहीं निवास करने का निश्चय किया। आप के प्रवचन आरम्भ हो गये। लोग प्रेम पूर्वक आप के उपदेशों को श्रवण कर अपने जीवन को कृतार्थ करने लगे।

ग्रन्थ प्रणयन भी चलता रहा। इन ग्रन्थों में उल्लेखनीय है 'व्यास दशक' जिसमें स्तुति और रहस्य का अभूतपूर्व संगम दिखाई देता है।

श्री हयग्रीव भगवान्

इन्हीं दिनों श्री देशिक के गुरुवर्य की पुत्री (श्री पुण्डरीकाक्षाचार्य की पत्नी) के पुत्र उत्पन्न हुआ। नवजातशिशु के पिता घर पर न थे। वह अपने किसी शिष्य के यहाँ गये थे। श्री देशिक ने शिशु के संस्कार आदि की व्यवस्था की, उसका नामकरण किया तथा रक्षा के निमित्त उसको सुदर्शन चक्र से चिन्हित किया। जब श्री पुण्डरीकाक्षाचार्य को समाचार मिला तो उन्होंने अगले दिन काञ्ची आने की तैयारी की। रात्रि में जब वह शयन कर रहे थे तो उनके आराध्यदेव श्री हयग्रीव भगवान् ने स्वप्न में आकर उनसे कहा कि 'तुम मेरी अर्चामूर्ति को जो तुम्हारे पास है श्री वेंकटनाथ देशिक को देदो।' भगवान् की आज्ञा को शिरोधार्य कर उन्होंने काञ्ची लौट कर वैसा ही किया। श्री देशिक ने इसे श्री हयग्रीव भगवान् की विशेष कृपा समझी। अब आप के पास श्री हयग्रीव भगवान् के दो अर्चा-विग्रह हो गये।

उत्तर-यात्रा

काञ्ची में धर्म का प्रवचन करते श्री देशिक को लगभग चार वर्ष बीत चुके थे। इस काल में आप का सम्पर्क भारत के सभी प्रदेशों से हो चुका था। मतान्ध म्लेच्छों के अत्याचारों से पीड़ित

राष्ट्र निराशा के समुद्र में गोते लगा रहा था। उसे भक्तभयहारी भगवान् का सहारा देकर और विश्वकल्याणकारी धर्म का सन्देश सुना कर आशान्वित बनाने का संकल्प लिये हुये श्री देशिक ने उत्तर भारत की यात्रा की। आप काञ्ची से तिरुपति आये। तिरुपति में श्री वेंकटेश भगवान् के आप ने दर्शन किये। उनके दो कर कमलों में शंख-चक्र थे। शेष दो कर कमलों में से एक वरदहस्त था और दूसरा शरणागति मार्ग की ओर संकेत कर रहा था। भगवान् के इस रूप में श्री देशिक को समाज की रक्षा का उपाय मिल गया। आपने जनता को बताया कि जो व्यक्ति भगवान् की शरण ग्रहण कर लेता है, भगवान् का वरदहस्त उस शरणागत पर रहता है। कष्टों को सहन करते हुये जो धर्म पर दृढ़ रहता है भगवान् उसकी रक्षा करते हैं। भगवान् की दयालुता में आपने प्राणिमात्र का हित देखा और उसी भाव को आपने 'दयाशतक' लिख कर भगवान् के सन्मुख रक्खा तथा जनता को आस्वादन कराया। वहाँ से चल कर आप जगन्नाथपुरी आये। पुरी से श्रीकूर्म होते हुये आप ने प्राच्य एवं मध्य भारत की यात्रा की। फिर गया, काशी, प्रयाग, अयोध्या, नैमिषारण्य होते हुये आपने बदरिकाश्रम तक की यात्रा की। वहाँ से लौट कर राजस्थान, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र होते हुये आप श्री अहोबिलक्षेत्र पहुँचे। और वहाँ से अन्य अनेकों दिव्य देशों का दर्शन करते हुये आप काञ्ची वापिस लौटे।

राष्ट्र-सेवा

श्री देशिक की यह यात्रा लगभग सात वर्षों में पूर्ण हुई। विद्वानों से लेकर सर्व साधारण तक सभी आप के सम्पर्क में

आये। सभी को अभ्युदय और परम निश्रेयस का मार्ग दिखलाते हुये आपने सब का नाता भगवान् से जोड़ दिया। अध्यात्मवाद की गहनता के कारण जनता में उसके प्रति जो उपेक्षा का भाव होने लगा था वह रुक गया। निर्गुण निराकार परब्रह्म के बदले सगुण साकार भगवान् का परिचय पाकर समाज कृतार्थ होगया। साथ ही भगवदवतारों में राष्ट्रीय परम्परा की झांकी देखकर वह कृतकृत्य होगया। श्री देशिक एक तीर्थयात्री के रूप में आए थे। इसी रूप में वह वापिस लौट गये। उनके साथ राजसी ठाट न था, साज सामान न था, शिष्यों का बड़ा समूह न था तथापि उनकी यात्रा पूर्णतया सफल हुई। राष्ट्र के जन जन में जीवन ज्योति प्रज्वलित कर वह ऐसी लहर दौड़ा गये जिसने सोते हुये लोगों को सजग आत्मविश्वासी एवं ध्येयनिष्ठ बना दिया।

काञ्ची में पुनरागमन

काञ्ची में श्रीदेशिक की लगातार प्रतीक्षा हो रही थी। पूरे सात वर्ष आपको इस महायात्रा में लगे थे। आप के काञ्ची पधारने पर नगरी में सर्वत्र प्रसन्नता छा गई। आपका धार्मिक कार्यक्रम यथापूर्व चालू होगया। एक वर्ष के भीतर ही आप के इकलौते पुत्र श्री वरदाचार्य का जन्म हुआ। यथावत् पालन-पोषण और संस्कार करते हुये आपने पांचवें वर्ष में ही पुत्र का उपनयन संस्कार कर दिया। इसके पश्चात् आप स्वयं ही उसको वेद आदि शास्त्रों की शिक्षा देने लगे।

विरोधियों पर विजय

इन्हीं दिनों एक विशेष घटना हुई। श्री वरदराज भगवान् के उत्सव शिवकाञ्ची में हुआ करते थे। कुछ संकीर्ण मनोवृत्ति के

सम्प्रदायान्तरवादी विद्वानों को यह अच्छा नहीं लगता था। भगवान् की शोभा यात्रा से उन्हें चिढ़ थी। विशेष कर भगवान के आगे आगे होने वाला द्राविड वेद का पाठ उनको बहुत अखरता था। अतः वे बाधा देने लगे। उनको समझाया गया। जब किसी भी उपाय से वे न माने तो अन्त में श्री देशिक को उनके साथ शास्त्रार्थ करना पड़ा। इस शास्त्रार्थ में श्री देशिक के पक्ष की विजय हुई। फल स्वरूप भगवान् के उत्सवों के कार्य क्रम में किसी प्रकार की बाधा न रह गई। इस के उपलक्ष्य में भगवान् के दो काहली बाद्यों में से एक के द्वारा श्री देशिक का स्वागत किया गया। इसमें थी स्वयं भगवान् की प्रेरणा और यह था श्रीवैष्णव जगत का परम सौभाग्य।

इससे विद्वेषी लोगों के हृदय पर गहरा आघात पहुंचा। उन्होंने चाहा कि किसी न किसी प्रकार श्री देशिक को नीचा दिखाया जाय। इसीलिए उन्होंने एक प्रमुख अद्वैतवादी संन्यासी को श्री वैष्णव सिद्धान्त पर आक्षेप करने के लिये प्रेरित किया। उन संन्यासी महानुभाव ने आकर श्री वैष्णव सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए श्री देशिक को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। किन्तु श्री देशिक की विद्वत्ता के सामने वह टिक न सके। उनको हार मानना पड़ी। इस पराजय से उन संन्यासी के हृदय में प्रतिहिंसा की भावना जागी वह तान्त्रिक भी थे। इसलिए मन्त्र-तन्त्र का प्रयोग कर उन्होंने चाहा कि श्री देशिक के उदर में जल यहां तक बढ़ जावे कि उदर विदीर्ण हो जावे। श्री देशिक को यह समझते देर न

लगी। जब आपके उदर में जल बढ़ने लगा आपने पास ही एक स्थान पर नख से तनिक खोद दिया। बस उदर का जल वहीं से निकलने लगा। इस प्रकार उन संन्यासी महोदय का तन्त्र भी निष्फल सिद्ध हुआ। अन्त में आप के प्रभाव को समझ कर उन्होंने अपने किये पर पश्चात्ताप किया और आपसे क्षमायाचना की।

श्री रङ्ग से निमन्त्रण

श्री रंगनगर दक्षिण भारत का सर्वप्रधान विष्णु क्षेत्र है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही इस क्षेत्र की मान्यता सर्वत्र है। श्री रामानुजाचार्य के पूर्व काल से ही यह श्री वैष्णव जगत का प्रचार-केन्द्र बन चुका था। उनके पश्चात भी कई शताब्दियों तक श्री वैष्णव सिद्धान्त के प्रचार का कार्य इसी केन्द्र से होता रहा। और इसी लिये इसकी स्मृति में आज भी सर्वत्र (श्रीमन्! श्री रङ्ग श्रियमनुपद्रवामनुदिनं सम्वर्धय) द्वारा श्री रंगलक्ष्मी की अभिवृद्धि के लिये सर्वत्र प्रार्थना चलती है। भारत के प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में इसकी गणना थी। वेद शास्त्र तथा द्राविड प्रबन्ध के विद्वानों का वहां ऐसा जमघट रहता था कि विद्वानों की दिग्विजय उस समय तक पूर्ण नहीं होती थी जब तक कि श्रीरंग के विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित न कर दिया जाय।

इस समय श्रीरंग के प्रमुख आचार्यों में श्रुतिप्रकाशिकाकार श्री सुदर्शनसूरि, श्री पेरियआच्चान् पिल्लै, श्री कृष्णपाद, श्री पिल्लैलोकाचार्य आदि विख्यात लोग थे जिन की सर्वत्र प्रतिष्ठा

थी। ये सभी लोग वृद्ध हो चुके थे। वृद्धावस्था ने अब इनको विश्राम लेने को बाध्य कर दिया था। अतः उत्तर भारत से एक विद्वन्मण्डल के श्रीरंग पहुंचने पर इन वयोवृद्ध आचार्यों ने मिलकर परस्पर विचार किया और यह निश्चय किया कि श्री देशिक को काञ्ची से बुलाया जाय और उनसे इन विद्वन्मण्डल का शास्त्रार्थ कराया जाय। बस, इसी निश्चय के अनुसार श्री देशिक को आमन्त्रित किया गया। मान्य आचार्यों के आमन्त्रण को शिरोधार्य कर श्री देशिक ने श्री रंगनगर की ओर प्रस्थान किया।

श्री रंग में स्वागत

श्री रंग पहुँचने पर श्रीदेशिक का ऐतिहासिक स्वागत हुआ। गाजे-बाजे के साथ सभी प्रतिष्ठित आचार्यों ने आकर आपका बड़े ही सम्मान के साथ अभिनन्दन किया। भगवान श्री रंगनाथ की ओर से श्रीदेशिक का अभूतपूर्व सम्मान हुआ। श्रुतप्रकाशिका-कार ने आपको पुष्पमाला पहिनाकर कहा—

"आचार्यवर! अब हम लोग अत्यन्त वृद्ध होगये। अब शास्त्रार्थों में परिश्रम करने की शक्ति हम लोगों में नहीं रही। इस महान कार्य को आप सम्भालने में समर्थ हैं। इस लिये इसका उत्तरदायित्व आप को समर्पित है। एक दिन श्रीरंग के श्री वैष्णवसमाज ने आचार्य श्री रामानुज मुनीन्द्र को काञ्ची से निमन्त्रित किया था। हम सब लोगों के निमन्त्रण को स्वीकार कर आप भी उसी प्रकार पधारे हो। भगवान श्रीरंगनाथ का आदेश यही है कि आप इसी स्थान से धार्मिक जगत का नेतृत्व करो और श्रेय का विमल पथ प्रदर्शित

करो।" इस अनुरोध को स्वीकार कर श्री देशिक ने सभी आचार्यों के साथ मन्दिर की परिक्रमा की और क्रमानुसार आल्वार-आचार्यों के दर्शन किये। इसके पश्चात् श्री रंग लक्ष्मी की वन्दना करने के बाद श्री देशिक श्री रंगनाथ भगवान् के सामने पहुँचे। वहां आपने आशु कविता में 'भगवद्ध्यान सोपान' स्तोत्र के द्वारा भगवान् की स्तुति की। प्रसन्न होकर भगवान् ने आदेश दिया—"आचार्य वेंकटनाथ! जाओ। जाकर विद्वन्मण्डल के समक्ष सफलतापूर्वक श्री रामानुजदर्शन की स्थापना करो।"

शास्त्रार्थ

फिर क्या था? श्रीदेशिक आकर विद्वन्मण्डल के सामने उपस्थित हुए। आपके दर्शन से वह मण्डल अत्यन्त प्रभावित हुआ सहसा मण्डल के विद्वानों के मुख से ये शब्द निकल पड़े—

"कीर्तिमहती आकारो ह्रस्वः"

अर्थात्—'कीर्ति बड़ी और आकार छोटा।' बस इसी उक्ति को लेकर श्री देशिक ने विचार आरम्भ कर दिया। लगातार सात दिनों तक विचार चलता रहा। प्रसंगवशात् वेदान्त के गहन विषयों पर गम्भीर विवेचन चला। अन्त में विद्वन्मण्डल के विद्वानों ने अपनी पराजय ही नहीं स्वीकार की प्रत्युत श्री देशिक की शिष्यता भी ग्रहण करली। इतना ही नहीं। इन सभी विद्वानों ने उत्तर भारत में श्री देशिक के उपदेशों को प्रचारित करने की भी प्रतिज्ञा कर डाली। इस प्रकार शास्त्रार्थ के परिणाम स्वरूप श्री वैष्णव

जगत के लिये सुदृढ विद्वानों का एक प्रसिद्ध दल भी मिल गया। ध्यान रहे कि इस वाद-विवाद में श्री देशिक को जो सफलता मिली उससे श्रीरंग का महत्व भी बढ़ा। इससे श्रीरङ्ग वासी बहुत प्रसन्न हुये। उनकी प्रार्थना के अनुसार श्री देशिक ने "शतदूषणी" नामक ग्रन्थ लिखकर इस विचार विनिमय को लेख बद्ध कर दिया।

इस शास्त्रार्थ में श्री देशिक की जो विजय हुई उसमें श्री रंगनाथ भगवान् और श्री रंगलक्ष्मी को अत्यन्त सन्तोष हुआ जगत्प्रभु भगवान ने प्रसन्न होकर श्री देशिक को "वेदान्ताचार्य" की उपाधि प्रदान की और जगन्माता लक्ष्मी ने "सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र" के विरुद द्वारा श्री देशिक को सम्मानित किया। आज का श्री वैष्णव संसार इन्हीं नामों के द्वारा श्री देशिक को पुकारता है और उनके वेदान्ताचार्यत्व और सर्वतन्त्र-स्वातन्त्र्य पर विश्वास करता है।

दिनचर्या

भगवान् की दिव्य प्रेरणा के अनुसार अब श्रीदेशिक श्रीरंग में ही निवास करने लगे। यहां पर अगणित नर-नारियों ने आप से उपदेश ग्रहण किया। समस्त आचार्यों ने मिल कर आप की अध्यक्षता में अपना संगठन किया और आप के ही तत्वावधान में प्रचार कार्य करने का निश्चय किया। श्री देशिक की दिनचर्या व्यवस्थित रूप में यथा विधि चलने लगी। प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में ही आप जागते। योग-साधना, आचार्यपरम्परा का ध्यान,

स्तोत्र पाठ तथा भगवन्नाम संकीर्तन करते। फिर शौच स्नान आदि से निवृत्त होकर कावेरी में स्नान करते। इसके पश्चात् ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण कर सन्ध्यावन्दन आदि प्रातः कालीन कृत्य समाप्त कर श्रीरंगनाथ भगवान् का दर्शन करने के लिये जाते। वहां भगवान् की स्तुति करते और तीर्थ प्रसाद आदि ग्रहण कर व्याख्यान शाला में पहुँचकर प्रवचन करते। फिर उपादान कर्म समाप्त कर आप पुनः स्नान करते और माध्याह्निक कृत्यों को करते। भगवान् की आराधना, पञ्चमहायज्ञ, बलिवैश्वदेव आदि से निवृत्त होकर भोजन करते। बाद में धर्म-ग्रन्थों का स्वाध्याय तथा नवीन ग्रन्थों की रचना करते। सायंकाल में पुनः स्नान कर सन्ध्या वन्दन आदि करते तथा भगवदाराधन करने के बाद पुन शिष्यों को शिक्षा देते। पुनः रात्रि में भोजन के उपरान्त योग साधना करते। इसी प्रकार प्रति दिन श्रीदेशिक की दैनिक चर्या चलती थी।

ग्रन्थ निर्माण

श्रीरंग नगर के निवास काल में श्रीदेशिक ने अनेकों महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। स्वयं श्री रामानुज मुनीन्द्र ने इस कार्य के लिये आप की बुद्धि को प्रेरित किया था। विशिष्टाद्वैत वेदान्त को दार्शनिक एवं रहस्य सम्बन्धी ग्रन्थों की आवश्यकता थी। आप के ग्रन्थों ने इसकी पूर्ति की। इन ग्रन्थों में उल्लेखनीय हैं—तत्वमुक्ताकलाप, न्यायपरिशुद्धि, सेश्वरमीमांसा और निक्षेप रक्षा। तत्वमुक्ता-कलाप में श्रीदेशिक ने पांच भागों में क्रमशः जड द्रव्य, जीव, नायक, बुद्धि, और अद्रव्य का विवेचन किया है।

न्याय-परिशुद्धि में प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द का वर्णन किया गया है। महर्षि जैमिनि की धर्ममीमांसा को मीमांसक सम्प्रदायों ने वेदान्त से सर्वथा स्वाधीन और अनीश्वरवादी कर्म काण्ड का समर्थक बताया था। उसका खण्डन कर सेश्वर कर्मकाण्ड का विधान श्रीदेशिक ने सेश्वरमीमांसा में किया और निक्षेपरक्षा लिख कर शरणागति पथ पर की जाने वाली शंकाओं का निराकरण किया।

कवितार्किकसिंह

इस प्रकार पर्याप्त समय श्रीरंग में व्यतीत करने के बाद श्री देशिक की इच्छा तिरु अहीन्द्रपुर जाने की हुई। अतः आप श्रीरंगनाथ भगवान् से आज्ञा लेकर वहां गये। यहां पर सम्प्रदायान्तरवादियों ने आप से शास्त्रार्थ करने के लिये एक प्रबल मोर्चा बनाया था। अठारह विभिन्न दर्शनों के विद्वानों ने इस प्रकार विरोधी संगठन बना कर आप को अपमानित करने की ठानी थी। परन्तु महामहिम श्रीदेशिक की उदारता और विशालहृदयता के सामने उनकी एक न चली। विश्वव्यापी धर्म की व्यापकता का प्रतिपादन करते हुये श्रीदेशिक ने संकीर्णता की ओर ले जाने वाले सारे ही वादों का खण्डन किया और वेदान्त की गहन गुत्थियों को सुलझा कर सब की जिज्ञासाओं का समाधान किया। परिणाम यह हुआ सभी विरोधी आप के सामने नतमस्तक हो गये। विभिन्न वादों के खण्डन में आपने जो युक्तियां उपस्थित की थीं उनको संकलित कर आपने एक ग्रन्थ का रूप दे दिया। यह ग्रन्थ 'परमत भंग' के नाम से प्रसिद्ध है।

कवितार्किकसिंह, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, वेदान्ताचार्य

आचार्य श्रीवेंकटनाथ देशिक

इस शास्त्रार्थ से जनता श्रीदेशिक की विद्वत्ता से भली भांति परिचित हो गई। उसे यह विश्वास हो गया कि श्रीदेशिक एक महान् कवि एवं तार्किक हैं। शास्त्रार्थ के बाद ही श्रीदेवनायक भगवान् की ओर से आप को 'कवितार्किकसिंह' की उपाधि प्रदान की गई। अतः जनता को अपने विश्वास में किसी प्रकार की आशंका भी नहीं रह गई।

कलाकार

श्री देशिक जैसे विद्वान थे वैसे ही कलाकार भी थे। मूर्ति कला, वास्तु कला, उपयोगी कला आदि में से कोई भी कला ऐसी न थी जिसका पूरा पूरा ज्ञान आप को न हो। आप के 'सर्वतन्त्र स्वतन्त्र' होने की यह ऐसी विशेषता थी जिसके आगे कलाकारों को मस्तक झुकाना पड़ता था। ईर्ष्यालु विद्वानों को इसका ठीक ठीक पता न था। इसी लिये उन लोगों ने एक कलाकार कारीगर को समझा बुझा कर आप के पास भेजा। उसने आप के पास जाकर कहा कि 'आप यदि वास्तव में सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं तो एक कुआं बना कर क्यों न दिखाइये।' श्री देशिक ने यह स्वीकार कर लिया और कुआं खोद कर, बना कर तैयार कर दिया। कुआं देख कर तो द्वेषियों के होश उड़ गये। वह कुआं आज भी मौजूद है और श्री देशिक की कला निपुणता का प्रमाण बना हुआ है।

संपेरे की करतूत

इन्हीं दिनों काञ्ची से कुछ शिष्यों ने आकर आप से प्रार्थना

की कि आप काञ्ची पधारें और वहाँ अपने उपदेशों के द्वारा जिज्ञासु-जनों को तृप्त करें। इसलिये श्री देशिक वीरनारायणपुर होते हुये काञ्ची पधारे। यहां पर आपने रहस्य ग्रन्थों का विशेष प्रवचन आरम्भ किया। ईर्ष्यालु लोगों को यह सहन न हो सका। वे आप के वैभव को देख कर सहम गये। और कोई उपाय न देख कर इन लोगों ने आप के प्राण लेने की ठानी। एक संपेरे को इसके लिये तैयार किया गया कि वह आप को अपने विषैले सर्पों का निशाना बनावे। संपेरे को क्या मालूम था कि आज उसके सांपों को गरुड़ का सामना करना होगा। वह अपने सांपों का पिटारा लेकर श्री देशिक के पास पहुँचा। वहां उसने अपने पिटारे को खोल दिया। श्री देशिक ने देखा सांप निकल निकल कर उनकी ओर आ रहे हैं। तुरन्त आपने गरुड़ मन्त्र बोल कर अपने चारों ओर सात रेखायें खींच लीं। सांप श्री देशिक की ओर बढ़ते तो किन्तु उन रेखाओं को पार न कर पाते। कोई एक रेखा को पार करके रुक जाता, कोई दो, कोई तीन, कोई चार। यह देख कर संपेरे को क्रोध आ गया। उसने खीज कर शंखपाल नाग छोड़ दिया। यह नाग उसका अन्तिम शस्त्र था। उसको एक एक कर रेखाओं को पार करता देख कर श्री देशिक ने गरुड़ का आवाहन किया। तुरन्त गरुड़ ने आकर उस नाग को पकड़ लिया। यह देखते ही संपेरा सकपका गया। वह श्री देशिक के चरणों में गिर कर क्षमा मांगने लगा। दयार्द्र श्री देशिक ने उसे क्षमा कर दिया और गरुड़ की प्रार्थना कर उसके नाग को भी छुड़वा दिया।

राजकीय निमन्त्रण

श्री देशिक के शिष्यों की कमी न थी। आप की विद्वत्ता की धाक सब पर थी। सभी आप का सम्मान करते थे। शिष्य लोग तो उनके लिये सर्वस्व अर्पित करने के लिये तैयार रहते थे। इतना होने पर भी कभी आपने अर्थ संग्रह की ओर रंच भर भी ध्यान नहीं दिया। आप की वृत्ति थी भिक्षा। और भिक्षा भी कैसी? मांग कर नहीं। बिना मांगे मिलने वाली भिक्षा को ही आप ग्रहण करते थे। और वह भी उतनी ही जितने में आप के एक दिन का निर्वाह हो सके। कई बार शिष्यों ने गुप्त रूप से द्रव्य को आप तक पहुंचाने की चेष्टा की। परन्तु आप ने ग्रहण नहीं किया। एक बार तो चावल की भिक्षा में मिला कर आप को किसी ने द्रव्य दिया। घर पर लाकर जब आपने वह भिक्षा लाकर धर्मपत्नी को दी तो उन्होंने उस द्रव्य को निकाल कर बाहर कूड़े पर फेंक दिया। ऐसे वैराग्यनिष्ठ महात्मा को राजकीय वैभव कैसे आकृष्ट कर सकता था? विजयनगर महाराज के सम्मान्य शांकरसम्प्रदायाचार्य श्री स्वामी विद्यारण्य आप से भली भांति परिचित थे। उन्होंने आप को राजाश्रित होकर राज्य में निवास करने के लिये आमन्त्रित किया। जब आपने यह आमन्त्रण स्वीकार न किया तो पुनः राज्य की ओर से स्वागत एवं अभिनन्दन का वचन दिया। परन्तु आप ने स्पष्टतया वहां जाने से इनकार कर दिया और अपने हृद्गतभाव को प्रकट करने के लिये 'वैराग्यपञ्चक' लिख कर भेज दिया।

धन का दान

श्री देशिक के पास धन था ही नहीं। फिर भी कुछ द्वेषियों ने आप को खिजाने की चेष्टा की। एक दिन कोई ब्रह्मचारी नगर में द्रव्य की सहायता मांग रहे थे। ईर्ष्यालु लोगों ने उसे आप के पास भेज दिया। ब्रह्मचारी जी ने आप से आर्थिक सहायता की याचना की। श्री देशिक ने उस समय महालक्ष्मी की प्रार्थना की। उसी समय आप के सामने द्रव्य का ढेर लग गया। अब आपने ब्रह्मचारी को यथेष्ट धन देकर बिदा किया। जिन लोगों ने ब्रह्मचारी को यहां तक भेजा था वे भी तमाशा देखने के लिये इधर उधर से झांक रहे थे। श्री देशिक ने उनको अपने पास बुलाया और जो कुछ धन बचा पड़ा था उसको उन्हें दे दिया।

दक्षिण भारत की यात्रा

दक्षिण भारत श्री देशिक का निवासस्थल था ही। फिर भी अनेकों तीर्थ और दिव्य देश ऐसे थे जिनकी आपने अभी तक यात्रा नहीं की थी। अतः आपने दक्षिण भारत की भी यात्रा करने का निश्चय किया। काञ्ची से चल कर आप तिरुवाली होते हुये तिरुकुडन्दै पधारे। वहां से आप श्री विल्लिपुत्तूर आये। यहां आप ने 'गोदा स्तुति' की रचना की। यहां से आप आल्वार-तिरुनगरी पहुँचे। वहां आल्वार श्री शठकोप ने आप को सहस्रगीति की षट्साहस्री व्याख्या पर विस्तृत टीका लिखने के लिये प्रेरित किया। वहां से आप तिरुक्कोवलूर तिरवणै होते हुये तिरु-

नारायणपुर पधारे। यहीं युगसंस्थापकाचार्य श्री रामानुज मुनीन्द्र के सम्बन्ध में आप ने 'यतिराज सप्तति' की रचना की। वहां से तिरुअनन्तपुर होकर जब आप वापिस लौट रहे थे तो आप को यह सूचना मिली कि श्रीरंग में कुछ मतान्तरवादी विद्वानों ने आकर इतना ऊधम मचा रक्खा है कि भगवान् का आराधन तक बन्द हो गया है। सुन कर श्री देशिक को अपार दुःख हुआ। वह शीघ्रता के साथ श्रीरंग की ओर चल दिये।

श्रीरंग पहुँचने की इतनी जल्दी थी कि मार्ग में रसोई की व्यवस्था भी एक दिन आप न कर सके। अपने आराध्य देव श्री हयग्रीव भगवान् को आपने जल का ही भोग लगाया था। रात्रि में किसी ग्राम में पहुंच कर आप एक सज्जन के द्वार पर ठहरे और विश्राम करने लगे। इतने में भगवान् घोड़े के रूप में उसी सज्जन का खेत चरने लगे। उस सज्जन ने जा कर घोड़े को भगाना चाहा किन्तु घोड़ा भागा नहीं। तब उन्होंने श्री देशिक को यह समझ कर जगाया कि घोड़ा आप का ही होगा। जागते ही आप समझ गये कि यह भगवान की क्रीड़ा है। अतः आपने उसी सज्जन के घर से थोड़ा सा दूध मंगाया और भगवान् को निवेदन किया। तुरन्त घोड़ा अन्तर्धान हो गया। सवेरा होने पर देखा गया कि रात में घोड़े ने जिस जिस जगह अपना मुँह लगाया था वहां एक एक स्वर्ण खण्ड लगा हुआ है। इससे उस सज्जन को बड़ी प्रसन्नता हुई। रात्रि बिता कर श्री देशिक फिर चले। यूं पैदल ही चलते चलते आप श्रीरंग पहुंच गये।

विद्वानों पर धाक

आप के श्रीरंग पहुँचते ही हठवादियों के होश उड़ गये। सारी शंकाओं का सन्तोषजनक उत्तर देकर आप ने भगवान् की आराधना यथापूर्व चालू करा दी। इन शंकावादी विद्वानों का नेतृत्व कर रहे थे श्री कृष्ण मिश्र जो प्रबोध चन्द्रोदयकार श्रीकृष्ण मिश्र के वंशज थे। श्री कृष्ण मिश्र ने प्रबोधचन्द्रोदय नाटक श्री देशिक को दिखलाया। आपने सरसरी दृष्टि से उसे देखा और अपने सिद्धान्त के समर्थन में उसी ढंग का 'संकल्पसूर्योदय' नाटक लिख कर उपस्थित कर दिया। इसे देख कर श्री कृष्ण मिश्र के सम्मान पाने की आशा पर पानी फिर गया। तो भी उन्होंने श्री देशिक से एक दिन एकान्त में कहा–"महाराज! आप से मैं हारा। पर अन्य किसी से मैं पराजित न हो सका। इस लिये आप के सम्मान के बाद मेरा सम्मान होना चाहिये।' श्री देशिक मिश्र जी के हृद्गत भावों को समझ चुके थे। उस दिन भगवान् का दर्शन करने के लिये आपने ऐसा स्थान चुना जहां पर अन्त में ही तीर्थप्रसाद मिल पाता था। आपने उस स्थान पर स्थिर रह कर सब दर्शनार्थियों के बाद तीर्थप्रसाद ग्रहण किया। इसका मिश्र जी पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। वह श्री देशिक के भक्त हो गये।

कुछ ही दिनों के अनन्तर श्री डिण्डिम कवि का श्रीरंग आना हुआ। आते ही अपनी विद्वत्ता पर गर्व करते हुये उन्होंने श्री देशिक को अपना रामाभ्युदय महाकाव्य दिखाया यह काव्य

उन्होंने एक राजवंश के सम्बन्ध में लिखा था। श्री देशिक ने उनसे फिर मिलने के लिये कह कर यादवाभ्युदय महाकाव्य लिख डाला। पुनः उनके आप के पास आने पर आपने अपना महाकाव्य दिखलाया। इस महाकाव्य की शैली में बड़ा ही आकर्षण था जिससे प्रभावित हुये बिना वह कवि महोदय नहीं रह सके। उन्होंने उस शैली का अनुकरण कर भागवत चम्पू लिखा उस पर स्वामी जी का अनुमोदन प्राप्त किया। इस प्रकार विद्वानों को अपने विद्या बल से प्रभावित करते हुये आप के प्रवचनों का कार्यक्रम चलता रहा।

प्रथम तनियन् श्लोक

श्री देशिक अपने जीवन के ७० वर्ष समाप्त कर चुके थे। अब आप ने ७१ वें वर्ष में प्रवेश किया। इसी वर्ष आप के सुपुत्र श्री वरदाचार्य ने आप से वेदान्त का अध्ययन करने का निश्चय किया। सौर चैत्र (मेष) के पुनर्वसु नक्षत्र में यह अध्ययन आरम्भ हुआ। मङ्गलाचरण में ही श्री वरदाचार्य ने श्री देशिक की सेवा में यह श्लोक निवेदन किया—

श्रीमान्वेङ्कटनाथार्यः कवितार्किककेसरी।
वेदान्ताचार्यवर्यो मे सन्निधत्तां सदा हृदि॥

अर्थात्, 'कवितार्किकसिंह, वेदान्ताचार्य श्री वेंकटनाथ देशिक सदा मेरे हृदय में निवास करें।' इस महनीय श्लोक के सम्बन्ध में एक अनुश्रुति भी प्रचलित है, जिसका उल्लेख आचार्य-

द्वात्रिंशत् में किया गया है। वह यह है कि महाराज तोण्डैमान ने वेङ्कटाचल पर पहुंच कर श्री निवास भगवान् से पूर्वाचार्यों की सूक्ति का उपदेश देने के लिये प्रार्थना की। तब भगवान् ने इसी श्लोक का उपदेश दिया था। इससे प्रकट होता है कि श्री देशिक की महत्ता को प्रकट करने वाला यह श्लोक भगवान् की दृष्टि में भी महत्व पूर्ण है।

साहित्य-प्रणयन

सम्प्रदायान्तरवादी अब यह भली भांति समझ चुके थे कि श्रीदेशिक से पार पाना असम्भव है। अत: अब उन्होंने यह चेष्टा की कि किसी प्रकार आपस में ही कलह बढ़े। इसके लिये घृणित जाल फैलाया गया और इसमें श्री वैष्णव सम्प्रदाय के एक मान्य आचार्य को फंसाया गया। उन्होंने एक दिन सायंकाल श्रीरंग मन्दिर में श्री देशिक को शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारा। श्री देशिक ने उत्तर दिया कि "मैं किसी भी अवस्था में श्री वैष्णव के साथ शास्त्रार्थ नहीं कर सकता।" लोगों ने इस शास्त्रार्थ के लिये बहुत प्रयत्न किये किन्तु श्री देशिक अपने निश्चय पर दृढ़ थे। श्रीवैष्णवता के नाते आप के हृदय में जो प्रेम था उसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज सभी को मिल गया। इतने में आप श्री रङ्गनाथ भगवान के सामने पहुँच गये थे। वहां आप को श्री शठारि (भगवान् की पादुका) के सम्बन्ध में एक सहस्र श्लोकों की रचना करने का दैवी आदेश मिला। आदेश को शिरोधार्य कर अगले दिन आपने १००० श्लोकों के द्वारा भगवान् के पाद-

पीठ की स्तुति की। इस स्तुति में आप भगवान् से यह प्रार्थना करना न भूले—

आपादचूडमनपायिनि दर्शनेऽस्मिन्
आशासनीयमपरं न विपच्चहेतोः।
आपातशान्तिमधुरान्पुनरस्मदीयान्
अन्योन्यवैरजननी विजहात्वसूया॥

आशय यह कि पूर्णतया विशुद्ध श्री रामानुज दर्शन के सम्बन्ध में एक मात्र यही कामना है पारस्परिक वैर की भावना उत्पन्न करने वाली असूया इसके अनुगामियों को छोड़ दे। इस स्तोत्र को श्रवण करने के लिये जनता अत्यधिक संख्या में उपस्थित थी। सभी ने श्री देशिक की आशु कविता की सराहना की और कहा कि 'कवितार्किकसिंह की उपाधि आप के सर्वथा अनुरूप है।' इसी समय विद्वानों ने समस्यायें भी दीं जिनकी श्री देशिक ने तुरन्त पूर्ति कर आश्चर्यमयी प्रतिभा का परिचय दिया।

'श्री पादुका सहस्र' की रचना के उपरान्त भी ग्रन्थ रचना और प्रवचनों का कार्य-क्रम भली प्रकार चलता रहा। एक दिन श्री पेरिय आचान् पिल्लै ने श्री देशिक से शरणागति योग पर एक संक्षिप्त श्लोकबद्ध लिखने की प्रार्थना की। इस प्रार्थना को स्वीकार कर श्री देशिक ने 'न्यास विंशति' की रचना की। इसी प्रकार अन्य ग्रन्थों की भी आप रचना करते रहे।

द्वितीय तनियन् पद्य

श्री देशिक के प्रवचनों में कुछ ऐसा आकर्षण था जिसके कारण अवस्था के मोह को छोड़ कर वयोवृद्ध विद्वान् एवं

आचार्य लोग भी आप के प्रवचनों को श्रवण करते थे। आप के ग्रन्थों का भी विद्वानों में अत्यधिक आदर था। बड़ी श्रद्धा के साथ आप के ग्रन्थों का जहां तहां प्रवचन और अध्ययन चलता था। इस सम्बन्ध में श्री लोकाचार्य जी ने आप के ग्रन्थों का जिन शब्दों में अभिनन्दन किया वह एक स्मरणीय विषय बन गया है। श्री लोकाचार्य ने लिखा—

सीरोन्रु तूप्पुल तिरुवेंकटमुडैयान्,
पारोन्रच्चोन्नप्पलमो लियुल्—ओरोन्रु,
ताने अमैयादो तारणियिल् वाल्वारुक्कु,
वानेरप्पो मलवुम् वाल्वु ।

इसका आशय यह निकलता है कि श्री 'वेंकटनाथ देशिक के रहस्य, वेदान्त आदि विषयों के ग्रन्थों में से एक एक ग्रन्थ का कालक्षेप भी ब्रह्मानन्द के समान आनन्द देने में समर्थ है।' इस पद्य की चर्चा बहुत चली। शिष्यों ने इसको तनियन् पद्य के रूप में ग्रहण किया।

शिष्यों को संन्यास

श्रीदेशिक के शिष्यों में कई ऐसे थे जो संन्यास ग्रहण करने के लिये अत्यन्त उत्सुक थे। श्री देशिक थे गृहस्थ। आरम्भ से ही आदर्श गृहस्थ के रूप में वह अपना जीवन बिता रहे थे। आज कल भी वही स्थिति थी। जब शिष्यों ने आप से अनुरोध किया कि आप संन्यास दें तो पहिले तो इसे अस्वीकार किया, किन्तु

बाद आप को बाध्य होकर स्वीकृति देना पड़ी। आपने यथोचित व्यवस्था कर कई लोगों को संन्यास आश्रम स्वीकार कराया। इन संन्यासी शिष्यों में प्रमुख थे श्री ब्रह्मतन्त्र स्वामी।

पादरक्षा का सहारा

इधर तो शिष्य लोगों को सदा यह चिन्ता लगी रहती थी कि किस प्रकार श्री देशिक की परिपूर्ण कृपा का लाभ उठाया जाय उधर कुछ विरोधी लोग भी थे जो सदा यही सोचा करते थे कि किसी प्रकार श्री देशिक की प्रतिष्ठा भंग हो। एक दिन कुछ ईर्ष्यालु लोगों ने मिल कर आप के द्वार पर जूतों की माला लटका दी। वह इतनी नीची थी कि बाहर निकलते ही उसका सिर में लगना अवश्यम्भावी था। जब श्री देशिक अपने कुटीर से बाहर निकले तो उन्होंने इस कुकृत्य को देखा। देख कर वह शान्ति पूर्वक बाहर निकल आये और यह कहने लगे—

कर्मावलम्बकाः केचित् केचित् ज्ञानावलम्बकाः !
वयं तु हरिदासानां पादरक्षावलम्बकाः ॥

अर्थात् 'कोई कर्म मार्ग का अनुसरण करते हैं और कोई ज्ञान मार्ग का अनुसरण करते हैं किन्तु हम तो भगवद्भक्तों के जूतों के अनुयायी हैं।' इन शब्दों को सुन कर आस पास के लोग बहुत प्रभावित हुये। जिन लोगों ने यह कुकृत्य किया था उनको बड़ी लज्जा आई। वे आकर श्री देशिक के चरणों में गिर पड़े और क्षमा मांगने लगे।

पिता का श्राद्ध

फिर भी स्वभाव सहज ही नहीं बदला करता। जिसकी द्वेष करने की आदत पड़ जाती है उसे उसी में सुख मिलता है। एक दिन श्रीदेशिक के पिता का श्राद्ध था। आपने इसके लिये तीन ब्राह्मणों को निमन्त्रण किया। द्वेषियों ने उन ब्राह्मणों को समझा बुझाकर और लोभ देकर आपके गृह पर आने से रोक दिया। उधर श्री देशिक प्रतीक्षा कर रहे थे और इधर से ब्राह्मण लोग पहुँचे नहीं। जब बहुत देर हुई तो श्री देशिक ने स्वयं जाकर बुलाया। किन्तु उन लोगों ने जाने से इनकार कर दिया। असमय हो चुका था। अतः अन्य कोई ब्राह्मण भी प्राप्त नहीं हुआ। क्या किया जाय ? श्रीदेशिक ने सोचा। जब हमारे आराध्यदेव मौजूद हैं तो फिर हमें चिन्ता करने की क्या आवश्यकता, यह विचार कर आप अपने निवास स्थान पर आए, आकर आपने श्राद्ध का कृत्य आरम्भ किया। जब भोजन कराने का समय आया तो आपने तीन पत्तलों में सारे भोज्य पदार्थों को परोस कर पर्दा लगा दिया और मन्त्र पाठ करने लगे। उसी समय भगवान तीन ब्राह्मणों के रूप में प्रकट होकर भोजन करने लगे। यह जान कर आपके आनन्द की सीमा न रही। भोजन करने के उपरान्त आपने उनको यथाविधि बिदा किया। इस प्रकार उन दिव्य तेजयुक्त ब्राह्मणों को जाता देखकर विरोधियों का चेहरा उतर गया।

एकादशी में अन्न

फिर भी वे चूके नहीं। श्रीदेशिक प्रतिदिन श्री रंगनाथ भगवान का दर्शन करने के लिये जाया करते थे। सदा की भांति एक दिन

आप मन्दिर पहुँचे। एकादशी का दिन था। द्वेषियों ने पहिले से ही अर्चकों को समझा रक्खा था। श्रीदेशिक को अर्चक महोदय ने तीर्थ दिया और प्रसाद में अन्न का बना पदार्थ आपके हाथों पर रख दिया। भगवत्प्रसाद को आप मना कैसे करते? किन्तु एकादशी का व्रत था। इसलिए उस प्रसाद को सेवन कैसे करते अतः आप ने भगवान से पूछा—'आपकी क्या आज्ञा है। आपके प्रसाद को त्यागूं या ग्रहण करूं।' एक अन्न अर्चक पर उसी समय भगवान का आवेश हुआ और उन्होंने कहा—'भगवान की आज्ञा है कि एकादशी को अन्न का सेवन न किया जाय।' आपने ऐसा ही किया। और इसी विषय के शास्त्रीय निर्णय में 'हरिदिन तिलक' भी लिख डाला।

सत्यमंगल में निवास

इस प्रकार श्रीरंग में आपको काफी समय हो चुका था। एक दिन आप अपने कुटीर के चबूतरे पर बैठे हुए किसी ग्रन्थ के स्वाध्याय में तल्लीन थे। उसी समय एक आचार्य श्री कन्दाडै लक्ष्मणाचार्य जी उधर से पधारे। आपको इसका पता तक न था। आप अपने स्वाध्याय में संलग्न रहे। उन आचार्य जी के एक शिष्य ने यह देखा कि श्री देशिक ने खड़े होकर स्वागत नहीं किया तो उसको क्रोध आगया। फट उसने श्री देशिक के पास पहुंच कर आप को ढकेल नीचे डाल दिया। जब श्री देशिक को इसका कारण मालूम हुआ तो आपको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। अन्त में आपने सत्यमंगल जाकर एकान्तवास करने का

निश्चय किया श्री रंग से आप सत्यमंगल चले गए। थोड़े ही दिनों के बाद श्री कन्दाडे लक्ष्मणाचार्य जी को कुष्ठ रोग होगया। बहुत कुछ विचार करने के बाद उनकी समझ में यही आया कि इस रोग का कारण भागवतापचार ही हो सकता है। पता लगाने पर उनको उपर्युक्त घटना का ज्ञान हुआ। इससे उनको बड़ा दुःख हुआ। वह अपनी स्त्री के साथ सत्यमंगल गए और वहां श्री देशिक से क्षमा याचना कर प्रतिदिन उनका श्री पादतीर्थ ग्रहण करने लगे। फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में उनका रोग दूर होगया। साथ ही उनके पुत्र भी उत्पन्न हुआ। उसका नाम उन्होंने तीर्थ पिल्लै रक्खा। इसके उपरान्त वह आग्रह पूर्वक श्री देशिक को श्रीरंग लौटा लाए।

श्रीरंग पर आक्रमण

श्री देशिक का कार्यक्रम फिर यथा पूर्व चालू होगया। इन्हीं दिनों मुसलमानों ने श्रीरंग पर आक्रमण किया। आक्रमण की सूचना मिलते ही श्री रंगनाथ भगवान् के अर्चाविग्रह को छिपा दिया गया था। आक्रमणकारियों ने मन्दिर को तोड़ा फोड़ा, लोगों का वध किया, धन को लूटा तथा अत्याचारों का तांता लगा दिया। वयोवृद्ध श्रुतप्रकाशिकाकार इस भीषण विपत्ति को सहन न कर सके। अपने छोटे छोटे बालकों को तथा अपनी श्रुतप्रका-शिका (श्री भाष्य की टीका) को श्री देशिक को सौंपकर उन्होंने शरीर त्याग दिया। अपने शिष्यों के साथ श्रीदेशिक सत्यमंगल चले गए। वहां आप तिरुनारायणपुर पधारे। यहां पर आपने

श्रुतप्रकाशिका का संशोधन कर, उसका प्रवचन आरम्भ किया। मुसलमानों के उपद्रव की समाप्ति के लिए आपने 'अभीतिस्तव' की रचना की और नित्य प्रति उसका पाठ करने लगे।

तीसरा तनियन श्लोक

तिरुनारायणपुर में श्री देशिक ने निगम परिमल (सहस्रगीति की व्याख्या) का प्रवचन आरम्भ किया। श्री ब्रह्मतन्त्र स्वामी इस प्रवचन को श्रवण करने नहीं आए। श्री देशिक ने उनको बुला भेजा। फिर भी वह नहीं आए। कारण जानने का प्रयत्न करने पर मालूम हुआ कि वह इस ग्रन्थ को आप के पुत्र श्री वरदाचार्य से श्रवण करना चाहते हैं। श्री वरदाचार्य इस समय तक पूर्ण विद्वान होकर आचार्य की हैसियत से कार्य क्षेत्र में आ चुके थे। जब श्री देशिक को यह मालूम हुआ वह मौन होगये। इसके उपरान्त जब श्रीदेशिक कुछ दिनों में अपना प्रवचन समाप्त कर चुके तो श्री ब्रह्मतन्त्र स्वामी की प्रार्थना के अनुसार श्री वरदाचार्य ने निगम परिमल की व्याख्या आरम्भ की। श्री ब्रह्मतन्त्र स्वामी ने इस प्रकार श्री देशिक के पुत्र से भगवद्विषय का उपदेश ग्रहण करते हुए उनका शिष्यत्व भी स्वीकार कर लिया। इस नाते श्री देशिक उनके परमाचार्य हो गए। यह उपदेश चल ही रहा था कि एक दिन दैवी प्रेरणा के वशीभूत होकर श्री देशिक की प्रार्थना में श्री ब्रह्मतन्त्र स्वामी ने इस श्लोक की रचना की—

रामानुजदयापात्रं ज्ञानवैराग्यभूषणम्।
श्रीमद्वेंकटनाथार्यं वन्दे वेदान्तदेशिकम्॥

इसका अर्थ है कि 'श्रीरामानुज के दयापात्र, ज्ञान वैराग्य भूषण वेदान्तदेशिक, श्रीमान् वेंकटनाथाचार्य को प्रणाम करता हूं।' श्रीरामानुज से तात्पर्य है श्री वेदान्त देशिक के आचार्य आत्रेय रामानुजाचार्य (किटाम्बि अप्पुल्लार) का। तथापि रामानुज शब्द में भगवान से लेकर श्री आत्रेय रामानुजाचार्य पर्यन्त सारी गुरु परम्परा का संकेत भी आजाता है। साथ ही एक बात और भी है। तिरुनारायणपुराधीश भगवान 'रामानुजदयापात्र' कहलाते हैं क्यों कि श्रीरामानुज ने ही उन के दिव्यमंगल विग्रह का उद्धार किया था। भगवान ने अपना यह विरुद प्रसन्न होकर श्रीदेशिक को दिया था। यह हुआ श्लोक का प्रथम चरण। द्वितीय चरण में श्रीदेशिक को ज्ञान और वैराग्य का भूषण कहा गया है। श्लोक के उत्तरार्ध में उनके 'वेदान्ताचार्यत्व' का उल्लेख करते हुये श्रीवेंकट-नाथ देशिक नाम से उनकी वन्दना की गई है।

इस प्रकार श्रीदेशिक के सम्बन्ध में तीन तनियन् श्लोक हो गये। दिव्य प्रबन्ध के व्याख्यान के प्रसंग में इस तनियन् श्लोक की रचना हुई थी। अतः दिव्य प्रबन्ध, द्राविडवेद की परम्परा में इसी श्लोक को स्थान दिया गया। संस्कृत-द्राविड मिश्रित ग्रन्थों के आरम्भ में 'सीरोन्रु तूप्पुल..........' द्राविड पद्य को तनियन् श्लोक के रूप में पाठ करने की व्यवस्था हुई और श्रीदेशिक के संस्कृत ग्रन्थों के आरम्भ में 'श्रीमान्वेंकटनाथाचार्य ....' श्लोक का पाठ करना निश्चित होगया। परिणाम स्वरूप तीनों तनियन् श्लोक प्रचलित हो गए।

श्री रंगनाथ की पुनः प्रतिष्ठा

श्री देशिक को चिन्ता लगी थी श्री रंग मन्दिर की। मुसलमानों की शक्ति श्री रंग में अत्यन्त क्षीण हो चुकी थी। उनको मार भगाने का अवसर आ चुका था। आप इस चिन्ता में थे कि कोई नरेश इसके लिये तैयार हो जाय। इन्हीं दिनों चेन्चापुरी नरेश श्री गोप्पणार्य जी दर्शनार्थ पधारे।

श्री देशिक ने महाराज को क्षात्र धर्म का उपदेश देकर महाराज को इस कार्य के लिए तैयार कर लिया। महाराज ने शीघ्रता के साथ सेना का संगठन कर श्री रंग के उपद्रवकारियों को खदेड़ना आरम्भ कर दिया। सभी उपद्रवी मुसलमान भाग खड़े हुए। श्री रंग में उनका नाम तक नहीं रह गया। महाराज सेना के साथ तिरुपति पहुंचे। वहां से मर्यादा के साथ श्री रंगनाथ भगवान् को लाकर उन्हों ने अपनी राजधानी में पधरावनी की। वहां से श्री रंगनगर में जाकर उनकी पुनः प्रतिष्ठा कराई। यूँ श्री देशिक की महती चिन्ता दूर हुई। आपके आदेशानुसार बाद में महाराज ने श्री गोविन्दराज भगवान् की भी प्रतिष्ठा कराई थी।

अध्ययनोत्सव

श्री रंगनाथ भगवान् की पुनः प्रतिष्ठा का सारा समारोह श्री देशिक के तत्वावधान में हुआ। उत्सव समाप्ति के पश्चात् श्री देशिक पुनः यहीं निवास करने लगे। कई वर्ष शान्ति पूर्वक बीत

चुके थे कि एक बार तिरु-अध्ययन उत्सव हो रहा था। कुछ विद्वानों ने इस अवसर पर श्री रंग पहुंचकर इसे शास्त्र विरुद्ध बताया। बात बहुत बढ़ गई। परन्तु श्री देशिक ने सारे आक्षेपों का समाधान कर उत्सव को चालू कराया। इस अवसर पर एक महत्व पूर्ण निर्णय यह भी हुआ कि भविष्य में किसी प्रकार की शंका के उपस्थित होने पर भी कभी उत्सव के कार्यक्रम में किसी प्रकार की बाधा डालने की किसी को अनुमति नहीं रहेगी।

उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। इस उत्सव में श्री रंगनाथ भगवान् के सामने सभी आलवार आचार्यों को विराजमान कर उनकी मर्यादा की गई। इसके अनन्तर जैसे ही श्री देशिक मंगला-शासन प्रबन्ध का पाठ आरम्भ कर रहे थे भगवान् ने स्वयं एक अर्चक के द्वारा सूचित किया कि इस उत्सव को पुनः चालू करने का श्रेय श्री देशिक को है अतः जो प्रबन्ध पारायण आरम्भ हो उसमें सर्व प्रथम श्री देशिक तनियन् श्लोक का पाठ होना चाहिये। फल स्वरूप उस समय 'रामानुज दयापात्रम्............' का पाठ हुआ और तब से अब तक श्री देशिक की शिष्य परम्परा उसी भगवदादेश की पूर्ति में उसी प्रकार इस श्लोक का पाठ करती चली आती है दिव्य देशों के पारायण क्रम में भी श्री देशिक के तनियन् का सादर पाठ किया जाता है।

मध्यस्थ

विजयनगर राज्य के आध्यात्मिक सञ्चालक श्री विद्यारण्य अभी जीवित थे। अकस्मात् उनका माध्व सम्प्रदाय के प्रतिष्ठित

आचार्य श्री अक्षोभ्य मुनि के साथ शास्त्रार्थ ठन गया । इस शास्त्रार्थ के लिये श्री देशिक को मध्यस्थ चुना गया । लिखित शास्त्रार्थ हुआ और वाद-प्रतिवाद का सारा लेख श्री देशिक के पास निर्णय के लिये भेज दिया गया । आपने सारे लेख को पढ़ा और उस पर पूर्णतया विचार करने के पश्चात् अपना निर्णय यूं लिख दिया—

असिना तत्वमसिना परजीवप्रभेदिना ।
विद्यारण्यमहारण्यमक्षोभ्यमुनिरच्छिनत् ॥

अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा को पृथक् पृथक् करने वाली 'तत्वमसि की तलवार से श्री अक्षोभ्य मुनि ने विद्यारण्य रूपी महारण्य को काट दिया । पूर्व परिचय और मित्रता के कारण श्री विद्यारण्य को श्री देशिक से ऐसी आशा न थी तथापि वह श्री देशिक की न्यायप्रियता से प्रभावित हुए बिना न रह सके । उन्होंने कुछ शंकायें लिखकर श्री देशिक के पास अवश्य भेजीं जिनके उत्तर में उनको 'शतदूषणी' की एक प्रति मिली । सारे ग्रन्थ की सूक्ष्म आलोचना के उपरान्त वह केवल एक 'च' पर आक्षेप कर सके । इस आक्षेप के समाधान में श्री देशिक ने 'चकार समर्थन' नामक ग्रन्थ लिखकर उनके पास भेज दिया । श्री देशिक की इस प्रतिभा को देख कर तो वह चकित ही रह गए ।

शास्त्रार्थ से विश्राम

अब श्री देशिक ने शास्त्रार्थों से विश्राम ले लिया । इस कार्य का भार आपने अपने शिष्यों को ही सौंप दिया । अब यदि कोई विद्वान् शास्त्रार्थ के लिए उत्सुकता दिखाता तो आप के शिष्यगण ही बड़ी तत्परता के साथ शास्त्रार्थ करते । इन्हीं

दिनों उत्तर भारत के कुछ विद्वानों ने कांची आकर विशिष्टाद्वैत वेदान्त पर कई आक्षेप किये। जब श्री देशिक के पास इसकी सूचना पहुँची तो आपने श्री ब्रह्मतन्त्र स्वामी को शास्त्रार्थ के लिए कांची जाने की आज्ञा दी। आज्ञानुसार उन्होंने जाकर युक्ति और प्रमाणों द्वारा शंकावादियों को निरुत्तर कर दिया। शास्त्रार्थ के विजेता होकर वह जब वापिस लौटे तब श्री देशिक ने प्रसन्न होकर उनको 'पर्याय भाष्यकार' और 'ब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्र' इन उपाधियों से अलंकृत किया।

श्रीभाष्यशताभिषेक

श्री देशिक ने जिस दिन से आचार्यत्व का भार ग्रहण किया था उसी दिन से आपके प्रवचन और ग्रन्थनिर्माण के कार्य-क्रम आरम्भ हो गये थे। प्रवचनों में श्री देशिक ने जहां पूर्वाचार्यों के सभी ग्रन्थों का कालक्षेप किया वहां श्री भाष्य की ओर आप का विशेष ध्यान रहा। संल्कप सूर्योदय की रचना के समय तक आप भाष्य की ३० आवृतियां कर चुके थे। श्रुतप्रकाशिका टीका के साथ साथ भी आपने श्रीभाष्य का २८ वार प्रवचन किया। मूल श्री भाष्य का प्रवचन तो लगातार चलता ही रहा। यहां तक कि आपने श्री भाष्य की १०० आवृति पूरी कर लीं। इसी के उपलक्ष्य में श्री भाष्यशताभिषेक महोत्सव मनाया गया। यह सम्प्रदाय के लिये श्री देशिक की अपूर्व सेवा थी। कहा जाता है कि अधिकरणसारावली की रचना आचार्य ने इसी की स्मृति में की।

मूर्ति निर्माण

श्री देशिक अब अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे। यही सोचकर कुछ द्वेषियों ने आपके कलानैपुण्य पर आक्षेप करने की ठानी। उन्होंने

एक शिल्पकार को इसके लिए तैयार किया कि वह आपसे एक मूर्ति बनाने के लिये कहे। वह शिल्पकार एक अत्युत्तम पीठ बनाकर लाया। लाकर उसने पीठ को श्री देशिक के सामने रख दिया और कहा—'आचार्यवर! आप तो सफल कलाकार हैं ? क्यों न इस पीठ के अनुरूप एक मनोहर मूर्ति बना दीजिये।' श्री देशिक ने इसे भगवान की कृपा समझा। इसी बहाने भगवान् की एक मूर्ति के निर्माण करने का अवसर प्राप्त हो जायेगा, यह सोचते हुये श्री देशिक बहुत प्रसन्न हुये। किस रूप की मूर्ति बनाऊँ ? यह प्रश्न उनके बुद्धि-पटल पर चक्कर काटने लगा। इतने में रंगनाथ ने आज्ञा दी—'आचार्य ! अपनी ही मूर्ति स्वयं तैयार करो।' भगवान् की इस आज्ञा को आप अस्वीकार कैसे करते ? उसी दिन आपने मूर्ति तैयार करदी। भगवान् की नहीं, अपनी मूर्ति। अगले दिन शिल्प-कार ने आकर मूर्ति को देखा। पहले तो वह यह पहिचान न सका कि मूर्ति कौन सी है और वास्तविक रूप कौन सा है। उसने मूर्ति के कपोल पर नख गड़ाया। श्री देशिक के गाल पर से रक्त छलक पड़ा। मूर्ति का वास्तविक शरीर से इतना गहरा सम्बन्ध देख कर तो शिल्पकार के होश उड़ गये। वह श्री देशिक के चरणों में गिर कर क्षमा मांगने लगा। उसके जाने के उपरान्त श्री देशिक ने उस मूर्ति में अपने तेज को प्रविष्ट कर उसे अपने पुत्र को दे दिया।

श्रीमद्रहस्यत्रयसार

श्री देशिक के जीवन के ध्येय की पूर्ति होती जा रही थी। सौ से भी अधिक ग्रन्थ लिख कर आपने धर्म और वेदान्त दर्शन की पूरी पूरी प्रतिष्ठा कर दी थी। पूरे सौ वार श्री भाष्य सुना कर अपने शिष्यों को भी आप कृतार्थ कर चुके थे। अब गीता के

चरम श्लोक की तरह आपने भी सब का निचोड़ श्रीमद्-रहस्यत्रयसार नामक ग्रन्थ के रूप में लिखा। मूलमन्त्र, शरणागति मन्त्र, चरम मन्त्र की व्याख्या करते हुये आपने शरणागति मार्ग का सविधान शरणागति शास्त्र लिख कर जगत की एक महान किन्तु साथ ही साथ अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति करदी। इसके अन्त में 'शेषायुष्यपि शेषि दम्पति दया दीक्षा-मुदीक्षा महे' लिख कर आपने यह भी सूचित कर दिया कि आपके ध्येय की पूर्ति हो गई। अब जीवन के अवशिष्ट दिनों में दिव्य दम्पती के दया की दीक्षा की प्रतीक्षा ही शेष रह गई थी।

तिरुअहीन्द्रपुर में अन्तिम बार

इस प्रकार अपने अवतार कार्य को समाप्त कर श्री देशिक तिरुअहीन्द्रपुराधीश के चरणों में श्रद्धाञ्जलि समर्पित करना न भूले। श्री रंगनाथ भगवान् से अन्तिम विदा लेकर आप तिरु-अहीन्द्रपुर पहुंचे। इन दिनों में आपने श्रीमद्रहस्यत्रयसार का प्रवचन किया। इस प्रवचन में आपने बीच बीच में आई हुई शंकाओं का भी समाधान कर दिया। यही आपका अन्तिम प्रवचन था। इसी अवसर पर आपकी १०१ वीं जयन्ती का उत्सव शिष्यों ने बड़े उल्लास के साथ मनाया। इसी के उपलक्ष में श्री देशिक के दिव्य मंगल विग्रह की प्रतिष्ठा हुई।

अवतारसमाप्ति

जन्म दिन बीत गया। प्रवचन चलते रहे। किन्तु अब केवल सारतम अंशों का ही उपदेश चलता था। श्रीदेशिक की दिनचर्या पूर्णतया भगवदुपासना में लग चुकी थी। आपकी योगसाधना पूर्ण हो चुकी थी। परमपद प्रयाण का अवसर आया जान कर आपने स्थानीय शिष्यों को बुलाया। इस दिन कार्तिक मास का कृत्तिका नक्षत्र था। आपने सभी उपस्थित महानुभावों को धर्म पर दृढ रहने तथा भगवान् के चरणों में

विश्वास रखने का उपदेश दिया। श्री ब्रह्मतन्त्र स्वामी को एक शंखचक्रमुद्रा तथा लक्ष्मीहयग्रीव भगवान् का अर्चाविग्रह सौंप दिया, एक शंखचक्रमुद्रा अपने सुपुत्र को देदी, तथा श्रीगरुड़ से मिली हुई योग हयग्रीव भगवान् की मूर्ति को अपने अर्चा-विग्रह के साथ प्रतिष्ठित करने की आज्ञा दी। इस प्रकार अपनी निधि की व्यवस्था कर श्रीदेशिक ने अपने आचार्य का ध्यान किया और श्री पादतीर्थ को स्वयं ग्रहण कर अपने सभी शिष्यों को वितरित किया। इस के बाद आप लेट गये आपके सुपुत्र वरदाचार्य की गोद में आपका सिर था। ब्रह्मतन्त्र स्वामी की गोद में आपके चरण थे। भगवान् का ध्यान करते हुए पाञ्चभौतिक देह त्याग कर और दिव्य घण्टा का रूप ग्रहण कर आपने अपनी जीवन लीला संवरण करदी।

उपसंहार

श्री देशिक का भौतिक शरीर सदा के लिए संसार की दृष्टि से ओझल होगया। आपका महान आत्मा नित्यविभूति के केन्द्र में लीन होगया। अलौकिक ढंग से आप इस जगतीतल पर आये थे। उसी ढंग से आप चले गए। किन्तु जिस कार्य को करने के लिए आप आए थे उसको अधूरा छोड़ कर नहीं प्रत्युत पूरा कर आपने परम पद की राह ली। आप के आदेशानुसार सभी आचार्यगण ध्येयनिष्ठ हो चुके थे। विरोधी शान्त हो चुके थे। शरणागति का मार्ग सभी के लिए सुलभ हो चुका था। मोक्षधर्म की परम्परा उज्जीवित हो चुकी थी। और समस्त जिज्ञासाओं का स्थायी समाधान आपके ग्रन्थों में उपस्थित हो चुका था।

श्री देशिक के जीवन काल में ही तत्वदर्शियों ने समझ लिया था कि आप महापुरुष हैं। विष्णुघण्टा के अवतरण की

गाथा तो आपके जन्म से सम्बद्ध थी ही। भगवान के घण्टे की ध्वनि से आसुरी शक्तियों का नाश होता है। आप के शब्द भी आसुरी भावों को मिटाकर दैवी सम्पत्ति की प्रतिष्ठा करने वाले थे। भगवद्भक्तों ने समझा कि आप भगवान के अवतार थे। शेषावतार श्रीरामानुज के भक्तों ने समझा कि आप उनके अवतार थे। आप आचार्य थे। आचार्यों के आचार्य। आपने लिखा है कि जिसके जिह्वा रूपी सिंहासन पर भगवान विराजमान हैं ऐसे आचार्य से बढ़कर कोई देवता है यह मैं नहीं मानता। आप का अपने आचार्य पर विश्वास था। समाज यदि आप पर विश्वास रख कर आप के बताये हुए मार्ग से भगवान की शरण ग्रहण करले तो उस के अभ्युदय और श्रेय की सिद्धि ध्रुव है।

* श्री वेदान्त देशिक के ग्रन्थ *

स्तोत्र

१ देवनायक पञ्चाशत्
२ गोपाल विंशति
३ श्रीस्तुति
४ वरदराज पञ्चाशत्
५ शरणागति दीपिका
६ अष्टभुजाष्टक
७ वेगासेतु स्तुति
८ कामासिकाष्टक
९ परमार्थ स्तुति
१० न्यासदशक
११ दयाशतक
१२ भगवद्ध्यान सोपान
१३ दशावतार स्तोत्र
१४ न्यास तिलक
१५ भूस्तुति
१६ सुदर्शनाष्टक
१७ गरुडदण्डक
१८ गरुड पञ्चाशत्
१९ हयग्रीवस्तोत्र
२० रघुवीर गद्य
२१ अच्युत शतक
२२ वैराग्यपंचक
२३ गोदास्तुति
२४ यतिराज सप्तति
२५ न्यास विंशति
२६ न्यास विंशति व्याख्या
२७ षोडशायुध स्तोत्र

२८ अभीति स्तव
२९ देहलीश स्तुति
३० पादुका सहस्र
३१ दिव्य देश मंगलाशासन पञ्चक
३२ घटिका स्तुति

रहस्य ग्रन्थ

१ सम्प्रदाय परिशुद्धि
२ तत्वपदवी
३ रहस्य पदवी
४ तत्व नवनीत
५ रहस्य नवनीत
६ तत्व मातृका
७ रहस्य मातृका
८ तत्व संदेश
९ रहस्य संदेश
१० तत्व संदेश विवरण
११ तत्व रत्नावली
१२ तत्व रत्नावली प्रतिपाद्य संग्रह
१३ हस्तिगिरि माहात्म्य
१४ रहस्य रत्नावली
१५ रहस्य रत्नावली हृदय
१६ तत्वत्रय चुलक
१७ रहस्यत्रय चुलक
१८ सारदीप
१९ सारसार
२० परमपद सोपान
२१ अभयप्रदान सार
२२ तत्व शिखामणि
२३ रहस्य शिखामणि
२४ अंजलि वैभव
२५ प्रधान शतक
२६ उपकार संग्रह
२७ सार संग्रह
२८ मधुरकवि हृदय
२९ मुनिवाहन भोग
३० गुरुपरम्परासार
३१ रहस्यत्रयसार
३२ विरोध परिहार
३३ स्तेयाविरोध
३४ तिरुनारायणपुर माहात्म्य

द्राविड प्रबन्ध

१ मुम्मणिक्कोवै
२ पन्दुप्पा
३ कलल्पा
४ अम्मानैप्पा
५ ऊसल्पा
६ एसल्पा
७ अडैक्कलपत्तु
८ अर्थ पञ्चक
९ श्री वैष्णव दिनचार
१० पन्निरुनामम्
११ तिरुचिन्नमालै
१२ गीतार्थ संग्रहपाट्टु
१३ नवरत्नमालै

१४ आहार नियमम्
१५ तिरुमन्त्र सुरुक्कु
१६ द्वय सुरुक्कु
१७ चरमश्लोकस्सुरुक्कु
१८ प्रबन्ध सारम्
१९ तिरुमुडियडैवु

काव्य

१ सुभाषित नीवि
२ यादवाभ्युदय
३ समस्या सहस्री
४ हंस संदेश

नाटक

१ संकल्प सूर्योदय

प्रकरण ग्रन्थ

१ तत्वमुक्ताकलाप
२ सर्वार्थ सिद्धि
३ न्याय परिशुद्धि
४ न्यायसिद्धांजन

पूर्वमीमांसा

१ मीमांसा पादुका
२ सेश्वर मीमांसा

वेदान्त

१ ईशावास्योपनिषद् भाष्य
२ गीताभाष्य तात्पर्य चन्द्रिका
३ तत्व टीका
४ वेदार्थसंग्रह व्याख्यान
५ अधिकरण दर्पण
६ अधिकरण सारावली
७ द्रमिडोपनिषत्तात्पर्य रत्नावली
८ द्रमिडोपनिषत्सार
९ निगमपरिमल

वाद ग्रन्थ

१ शतदूषणी
२ वादित्रयखण्डन
३ चकारसमर्थन
४ परमतभंग

रक्षा ग्रन्थ

१ सच्चरित्र रक्षा
२ निक्षेप रक्षा
३ पाञ्चरात्र रक्षा
४ गीतार्थ संग्रह रक्षा
५ रहस्य रक्षा

अनुष्ठान ग्रन्थ

१ हरिदिन तिलक
२ आराधन कारिका
३ यज्ञोपवीत प्रतिष्ठा
४ वैश्वदेव कारिका
५ हरिदिन तिलक व्याख्या

शिल्पशास्त्र

१ शिल्पार्थ सार

वैद्यशास्त्र

१ रसभौमामृत
२ वृक्षभौमामृत

भूगोल

१ भूगोलनिर्णय
२ भूगोलनिर्णय व्याख्या

श्रीमज्जगद्गुरु श्रीरामानुजसम्प्रदायाचार्य

स्वामी श्री राघवाचार्य महाराज
आचार्यपीठाधिपति

आचार्यपीठाधिपति श्री राघवाचार्य

का

लेखन-प्रकाशन कार्य

१—आचार्यग्रन्थमाला का सम्पादन, प्रकाशन

२—श्री नृसिंहप्रिया का सम्पादन, प्रकाशन

३—श्री वैष्णव सम्मेलन का सम्पादन,

४—कल्याण, सन्मार्ग, सिद्धान्त, गीताधर्म, राष्ट्रधर्म, पाञ्चजन्य, युगधर्म, मानस मणि, प्रेमसन्देश, आदि पत्र-पत्रिकाओं में लेखों का प्रकाशन

लेखक के अन्य ग्रन्थ

१—श्री वैष्णव प्रस्थान

२—स्वामी दयानन्द और श्री वैष्णव प्रस्थान

३—मानमेय परिचय

४—यज्ञ रहस्य

५—भारतीय इतिहास का सिंहावलोकन

श्री आचार्य पीठ (प्रकाशन)

१—आचार्य ग्रन्थमाला

१—गुरुपरम्परा	—	—)
२—न्यासदशक	—	—)
३—श्री वेदान्त देशिक	—	।।)
२—श्री नृसिंह प्रिया (मासिक)	—	२) वार्षिक

विश्वकल्याणकारी धर्म एवं विश्वहितैषिणी संस्कृति का
ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिये

आचार्य ग्रन्थमाला और श्री नृसिंहप्रिया पत्रिका अवश्य पढ़ें।

व्यवस्थापक—
श्री आचार्य पीठ
बरेली

बांसल प्रेस, बरेली।